शोध मंथन Vol. XIV No.II Apr.-June 2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

अथर्ववेद में आयुर्वेद का स्वरूप एवं सिद्धान्त

प्राप्तिः 19.06.2023
स्वीकृतः 25.06.2023

48

कपिल धवन
शोधार्थी, इतिहास विभाग
गु०का०वि०वि०, हरिद्वार
ईमेलः *kapildhawan29011988@gmail.com*

डॉ० रेनू शुक्ला
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
कन्या गुरूकुल परिसर, देहरादून
ईमेलः *renu.shukla@gku.in*

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास का वर्णन आयुर्वेद के वर्णन के अभाव में अधूरा प्रतीत होता है। भारतीय इतिहास में आयुर्वेद एक स्वर्णिम अध्याय के रूप में जानाजाता है। मानव शरीर में उत्पन्न रोगों का उपचार अथर्ववेद में पंच तत्वों के द्वारा विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है, जो आयुर्वेद चिकित्सा के जनक के रूप में भी देखा जा सकता है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तीसरे सूक्त का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि पर्जन्य, मित्र, वरूण, चन्द्र, सूर्य यह पाँचों सृष्टि के पिता हैं,जबकि सम्पूर्ण सृष्टि की माता पृथ्वी अर्थात भूमि है और वृक्ष–वनस्पति इनके पुत्र–पुत्रियाँ हैं। इनमें अनन्त बल हैं। इनके बलों का उपयोग करने से मनुष्य के शरीर में आरोग्य स्थिर रह सकता है, और मनुष्य का जीवन दीर्घायु एवं शरीर स्वस्थ बन सकता है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. पर्जन्य/बादल से आरोग्य

पर्जन्य से वर्षा का शुद्ध जल जो स्वाति आदि मध्य नक्षत्रों से प्राप्त होता है, वह बड़ा आरोग्यप्रद है। इसका सेवन किये जाने से शरीर के सम्पूर्ण दोष दूर हो सकते हैं और पूर्ण निरोगता प्राप्त की जा सकती है। वर्षा जल के स्नान से शरीर के शुष्क रोग खुजली आदि त्वचा सम्बन्धित रोगों का निवारण होता है। आकाश में शुद्ध प्राण (आक्सीजन) विराजमान है, वह वर्षा के जल के साथ भूमि पर आता है। इसलिए वृष्टि (वर्षा) का स्नान आरोग्यवर्द्धक है।[1]

2. मित्र (प्राण/वायु) से आरोग्यता

प्राणायाम से योगसाधन में आरोग्यरक्षण का जो उपाय वर्णन किया है वह यहाँ अनुसंधेय है। दोनों नासिका–रंध्र–सूत्रनेति से. भस्त्रिका से प्राण वायु अंदर जाता है और उत्तम पवित्रता स्थापित करता है। खुली वायु में निर्वस्त्र रहकर वायुस्नान बड़ा आयोग्यवर्द्धक माना गया है। जो व्यक्ति वस्त्ररहित रहते हैं अथवा कम वस्त्र पहनते हैं, उनको रोग कम होते हैं। [2]

3. वरूण (जल) देव से आरोग्यता

वरूण मुख्यतः समुद्र का देव है। समुद्र के खारे पानी के स्नान से त्वचा सम्बन्धित रोग दूर

होते है, रक्तचाप/रक्तसंचरण उत्तम होता है। पाचन शक्ति बढ़ती है और अनेक प्रकार से आरोग्य प्राप्त हो सकता है। नदी तालाब में उत्तम प्रकार से तैरने से कई शारीरिक दोष दूर हो जाते हैं। प्रायः जल चिकित्सा से अनेक रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। हिमाच्छादित पर्वतों से निकलने वाली जल धाराएं हृदय में होने वाली जलन, आँखों के रोग, एडियों और पैरों (पिण्डलियों) के आगे वाले भाग में होने वाली पीड़ा को दूर करती हैं। यहाँ जल को उत्तम वैद्य भी कहा गया है।[3]

4. चंद्र देव द्वारा आरोग्य

चंद्र औषधियों का राजा है क्योंकि अधिकांश औषधियाँ चंद्रमा की किरणों के साथ बढ़ती हैं। चन्द्रमा का अन्य नाम सोम भी है।

5. सूर्य देव से आरोग्य

सूर्य पवित्र करने वाला है। सूर्यकिरण से जीवन का तत्व सर्वत्र फैलता है। सूर्य किरण का स्नान करने से आरोग्य प्राप्त होता है। हृदय रोग के कारण हृदय में होने वाली जलन तथा पीलिया या रक्ताल्पता जैसे विकारों को सूर्य की रक्तवर्ण (लालकिरणों) रश्मियों के सेवन द्वारा किया जा सकता है। यहां हमें रक्त वर्ण की रश्मियों के आयुष्यवर्द्धक गुणों के द्वारा उपचार किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य के शीर्ष (सर्वोच्च भाग में रोगों को नष्ट करने की शक्ति है यह अपनी किरणों में क्षेत्रीय रोगों को विनष्ट कर देता है।[4] सूर्य का ओजस्वी प्रकाश शरीर में त्रिधातुओं को पुष्ट करने वाले तत्व के रूप में सक्रिय होता है।[5]

सूर्य ताप एवं ऊर्जा से शरीरस्थ जोड़ों के रोगों से ग्रसित व्यक्तियों को लाभ प्राप्त होता है।[6] सिरदर्द एवं कास (खांसी) की पीड़ा से मुक्ति, वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म के प्रमाव से उत्पन्न होने वाले वात, पित, कफ जनित रोगो को दूर करने में सहायक है। इसके लिए अनुकूल वातावरण के साथ–साथ पर्वतीय एवं वनौषधियों का सहारा लेते थे।[7]

प्रमुख औषधियाँ

1. मुंज्ज अथवा शर

अथर्ववेद में मुज्ज शब्द का पर्याप्त वर्णन आया है, जिसका अर्थ पृथ्वी पर अंकुरित होने वाली घास अर्थात जीवनी शक्ति से है। इसका वर्णन मूत्रवाहिनी नाडियों एवं मूत्राशय में स्थित दूषित तत्वों को मूत्र वेग द्वारा शरीर से बाहर निकालने अर्थात पेशाब में उत्पन्न कठिनाई को दूर करने वाली रोग निवारक औषधि के रूप में किया गया है। इसके अतिरिक्त पित्तजन्य अशमरी अर्थात पित्त की पथरी के नाशक के रूप में इसका वर्णनआया है।

2. हरिद्रा (हल्दी)

अथर्ववेद में हरिद्रा को सभी औषधियों में श्रेष्ठ, उत्तम रस, गुण तथा वीर्य से युक्त है यह आरोग्यवर्द्धक, बलदात्री, हिसा न करने वाली तथा केशों को बढ़ाने वाली रोग–निवारक औषधि के रूप में हरिद्रा का वर्णन आया है। कुछ संदर्भों में इस औषधि का स्पष्ट नाम न लेकर इसे रात्रि में उत्पन्न होने वाली कहा गया है तथा इसके पर्यायवाची नाम रजनी शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका वर्णन कुछ इस प्रकार मिलता है– हे रजनी हरिद्रा नामक औषधि तू रात्रि में उत्पन्न हुई है, हे रामा कृष्णा तथा असिक्नी औषधियों आप सभी रात्रि में उत्पन्न हुई हैं, रंग प्रदान करने वाली है, हे औषधियों आप गलित कुष्ठ तथा श्वेत कुष्ठ ग्रस्त व्यक्ति को रंग प्रदान करें।[8]

आचार्य धन्वंतरि के अनुसार रामा शब्द से तात्पर्य रामा तुलसी, आरामशीलता, घृतकुमारी लक्षणा आदि है, कृष्णा तुलसी से तात्पर्य कृष्णा मूली, पुर्ननवा, पीपली, आदि असिक्नी से असिशिम्बी आदि का बोध होता है। इस प्रकार हरिद्रा अन्य औषधियों के साथ मिलकर श्वेत कुष्ठ दूर करने वाली है।[9]

3. पिप्पली

अथर्ववेद में इस औषधि का वर्णन वातविकार एवं उन्माद रोग की चिकित्सा हेतु किया गया है। यह औषधि जीवन को निरोगी और दीर्घायु प्रदान करने में समर्थ बतायी गयी है।[10] पिप्पली को चरक सहिंता में उत्तम रसायन औषधि कहा गया है।

4. नील

अथर्ववेद में कुष्ठ रोग निवारक औषधि के रूप में असिक्नी शब्द आया है, जिसका अर्थ नील नामक औषधि लिया है। नील नामक औषधि जो कि श्याम वर्ण वाली होती है इसके लेपन आदि से कुष्ठ आदि धब्बे को नष्ट हो जाती है। नील का प्रयोग त्वचा विकारों में अधिक किया जाता है। दूग्धवग्र एवं जीर्णवग्र आदि में इसका लेप करने से वग्र जल्दी अच्छे होते हैं। आचार्य सुश्रुत ने भी दाद व श्वेत कुष्ठनाशक महानीलघृत के योग में इसका प्रयोग किया है। इसी प्रकार पलित रोग नाशक नील्यादि तैल के योग में भी नील का प्रयोग हुआ है।[11]

5. आबय

अथर्ववेद में इसका वर्णन औषधि के रूप में मिलता है। इसके रसको उग्र (रोगनाशक) कहा गया है। आबय का अर्थ खाद्य भी है और गतिशील भी है। सायण ने इसका अर्थ सरसों से लिया है।[12]

6. लोध्र

अथर्ववेद में रोग निवारण औषधि के रूप में पर्णय शब्द आया है जिसका अर्थ लोध्र किया जाता है। इसके लेप मात्र से विषनाश की बात कही गयी है।

7. पृश्निपर्णी

अथर्ववेद के अनुसार, रोगों पर विजय पाने वाली औषधियों में सबसे पहले पृश्निपर्णी उत्पन्न हुई। इस औषधि का वर्णन कुष्ठ आदि त्वचा रोगों में प्रयोग हेतु किया गया है। यह लाल पत्ती वाली औषधि के लेपन मात्र से दाद, खुजली, फुलबहरी, कुष्ठ आदि रोगों का निदान करती है। इसके अतिरिक्त यह औषधि शारीरिक वृद्धि में बाधक रोगों को नष्ट करने के साथ–साथ गर्भ को क्षति पहुँचाने वाले रोगों एवं गर्भ स्त्राव रोग को भी नष्ट करती है। यह औषधि रक्त प्रदर व नक्सीर रोग में वमन (उल्टी) व शोधन उपरान्त बल की रक्षार्थ पानी में घोला हुआ सत्तू व पैया प्रयोग में मसूर व पृश्निपर्णी का योग दिया जाता है। गर्भपात व गर्भस्त्राव को रोकने हेतु छठे माह में पृश्निपर्णी, बला, गोक्षुर, शोभाज्जन व गम्भारी से सिद्ध दूध का सेवन करना चाहिये। सुश्रुत ने कफ प्रबल सन्धि शोथ नाशक लेप, फोड़ा–फुंसी, शिरोरोग, मुख पकने में, बच्चे की गुदा पीड़ा, दुर्बलता नाशक योग में पृश्निपर्णी के उपयोग का वर्णन किया है।

8. रोहिणी

इस औषधि का वर्णन लाल वर्ण (रंग) वाली औषधि के रूप में मिलता है। यह औषधि अंग–भंग, टूटी हड्डियों को जोड़ने, मांस से मांस, त्वचा से त्वचा जोड़ने तथा रूधिर, मांस व हड्डियों

को आवश्यकतानुसार बढ़ाने की विशेषता इस औषधि में प्राप्त होती है। यह औषधि घायल व्यक्ति, जले हुए व्यक्ति अंग टूटे व्यक्ति को पूर्व की भांति स्वस्थ करने की क्षमता रखने वाली बतायी गयी है। इस औषधि के प्रयोग से पुरूष की दोनों वीर्य–वाहिका नलिकाओं तथा अण्डकोशों के प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है। अर्थात पुरूष को नपुंसक बनाने में इस औषधि के प्रयोग का वर्णन मिलता है।[13]

9. बच या घोड़बच

अथर्ववेद में बच का प्रयोग रोग फैलाने वाले कीटाणुओं के नाशार्थ हुआ है। इसका प्रयोग दृश्यमान, अदृश्यमान एवं रेंगने वाले जीवों के विनाश के लिए किये जाने का वर्णन मिलता है।[14] ऑतों में होने वाले, सिर में होने वाले, कृतियों को बचा नामक औषधियों से समाप्त किया जा सकता है वचा का प्रयोग आज भी चिकित्सा के क्षेत्र में रोग निवारण औषधि के रूप में हो रहा है। इसके प्रकन्द (जड़) का पूर्ण कीटनाशक होता है। यह खटमल, जूँ एवं पिस्सुओं के विरूद्ध प्रयोग किया जाता है। यह मंदाग्नि व अतिसार रोग में लाभ पहुँचाता है। कृमि रोग और उसकी चिकित्सा में कृति कुठार रस नामक योग में दूधिया वच का प्रयोग हुआ है, जिससे पेट के कीड़े मरे होते हैं।[15]

10. मधुक

इस औषधि का वर्णन अथर्ववेद में विषनिवारक औषधि के रूप में मिलता है। यह औषधि सर्प के विष, मच्छर के विष, तथा बिन्छू आदि के विष के प्रभाव को समाप्त करती है। इसके साथ ही टिटनेस के विष के उपचारार्थ भी प्रयोग किये जाने का वर्णन अथर्ववेद के विष भैषज्य सूक्त में मिलता है।

11. मितली अथवा नितली

अथर्ववेद में इस औषधि का वर्णन केश लम्बे एवं सुदृढ़ करने एवं बाल गिरने व टूटने आदि की समस्या तथा बालों को पुनः उगाने के लिए मिलता है। इस प्रकार केश सम्बन्धित सभी रोगों के निदान हेतु इस औषधि के रस का लेपन वर्णित है।

12. दुर्वा

अथर्ववेद में इस औषधि का वर्णन श्राप विनष्ट करने के उपचार हेतु किया गया है। यह औषधि पिशाचों, ब्राहमणों, देवताओं तथा स्त्रियों द्वारा क्रोधवश दिये गये श्राप से मुक्ति प्रदान करती है।[16]

13. कपित्य (कैथ)

अथर्ववेद में इस औषधि का वर्णन वाजीकरण योग में प्रयोग हेतु किया गया है। इसे जननेन्द्रिय हेतु आनन्ददायक कहा गया है। यह औषधि पौरूष शक्ति बढ़ाने वाली बतायी गई है। अथर्ववेद में कपित्य का रोग निवारक औषधि के रूप में जो प्रयोग मिलता है वह आज भी आयुर्वेद चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयोग की जा रही है। इसका प्रमाण प्रमेह के रोगविषयक आर्यमत तथा पाश्चात्य मत की धुलना और उसका उपचार नामक लेख में हस्तिमेह नामक रोग मूत्र रोकने की असमर्थता की चिकित्सा में कपित्य की छाल के क्वाथ का प्रयोग देखने को मिलता है।[17]

14. शतावर

अर्थववेद में इसका वर्णन रोग निवारक औषधि के रूप में नहीं मिलता है अपितु पुरुष में

वाजीकरण शक्ति को बढ़ाने के लिए मिलता है। वर्तमान समय में भी इस औषधि का प्रयोग मानव शरीर में पौष्टिकता एवं पौरुष शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसके कुछ प्रयोग इस प्रकार है–

पुष्टिकारक निशास्ता के लडडू, वाजीकरण व धातुवर्द्धक योग में वस्वपनदोष नाशक योग आदि पौरुष चिकित्सा योगों में इसके प्रयोग कावर्णन मिलता है।

15. सोम

अथर्ववेद में सोम नामक औषधि का रस शरीर के लिए पोषणकर्ता तथा वृद्धिकारक व विषनाशक बताया गया है। सोग एक ही प्रकार का होता है किन्तु स्थान, नाम, आकृति, वीर्य, आदि के गेंद से विशेषतः 24 प्रकार का बताया गया है जिनमें– अंशुमान, मुंज्जवत, चन्द्रमा, रजतप्रभ, दुर्वासोम, कनियान, श्वेताक्ष, कबक, आदि प्रमुख हैं। यह औषधि तिब्बत व हिमालय क्षेत्र कश्मीर से सिक्किम तक 7000–16000 फुट तक की ऊँचाई पर पायी जाती है। इस पौधे की हरी शाखाओं का औषधीय प्रयोग होता है। यह औषधि कफवात शामक, शोधहर, वेदनाशामक, नाड़ीमंडल उत्तेजक, श्वासनलिका विस्फारक, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, गर्भाश्यसंकोचक आदि रोगों की चिकित्सा में प्रयोग करने का वर्णन मिलता है।[18]

16. पदम (कुत्मल)

अथर्ववेद में कुल्मल औषधि का प्रयोग अनेक रोगों की चिकित्सा में मिलता है। यह औषधि कफपित्तशामक, दाह प्रशमन जलन मिटाने वाला, छर्दिनिग्रहण, स्तम्भन, मूत्रविरंजनीय, प्रजास्थापन संतानउत्पत्ति, त्वगदोशहर त्वचारोग, ज्वरन ज्वरनाशक, बल्य बलवर्द्धक, विषध्न। वर्तमान समय में भी चिकित्सा में पदम का औषधि के रूप में प्रयोग हो रहा है जैसे– तीव्र ज्वर तथा विष चिकित्सा।

17. लाक्षा

अथर्ववेद में इस औषधि का वर्णन रोग निवारक के रूप में कई जगह मिलता है। इसका वर्णन चोट लगने, जलने व टूटे हुए अंग को ठीक करने की औषधि के रूप में मिलता है। इसे मांस, मज्जा व हड्डी जोड़ने वाली औषधि भी कहा गया है। इसकी उत्पत्ति बरगद, भद्र, पीपल, खैर, बड़ व पलाश वृक्षों की पुरानी शाखाओं पर बारीक कीटों द्वारा स्वरक्षणार्थ निर्मित रक्ताभ या गाढ़े भूरे रंग का रालदार पदार्थ से प्राप्त होती हैं। प्राप्त विवरण के आधार पर अथर्ववेद में लाक्षा को मांस बढ़ाने वाली व घाव भरने के लिए जाना जाता है। इसके अतिरिक्त यह औषधि कफ पित्तशामक, स्तम्भन, वणर्य, सन्धानीय तथा कफघ्न आदि रोगों की चिकित्सा में भी सहायक है।[19]

18. गुग्गल

अथर्ववेद में इसका वर्णन रोग निवारक औषधि के साथ–साथ हवन सामग्री के रूप में भी मिलता है। इसे किटाणुनाशक कहा जाता है। गुग्गल की धूनी से यक्ष्मा आदि संक्रामक रोग दूर भाग जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि–वातशामक, मेदोहर, कफशामक, शोधहर, व्रणशोधन, रक्त शोधक, रक्तप्रसादन, रक्तगण, श्वेतरक्तगणवर्द्धक, गण्डमाला नाशन, अश्मरी भेदन, बल्य आदि के लिए प्रयुक्त बतायी गयी है। फेफड़ों के क्षय रोग में यह एक उत्तेजक तथा कृमिनाशक औषधि के रूप में अत्यन्त लाभकारी मानी जाती है।

19. कूठ या कुष्ठ

अथर्ववेद में कुष्ठ का रोग निवारक औषधि के रूप में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। यहाँ पर इसे सर्वाधिक बलदायक व ज्वरनाशक बताया गया हैं पर्वतीय क्षेत्र में उत्पन्न इस औषधि को बलदायक

व ज्वरनाशक होने के साथ–साथ सिरदर्द व आँखों से कम दिखने के रोगों की अच्छी औषधि बताया गया है। विभिन्न प्रकार के ज्वर जैसे– तेईया, शीर्ष व एक वर्ष पुराने ज्वर की चिकित्सा में भी कुष्ठ का प्रयोग मिलता है। व्यहारमें कुष्ठ के नाम पर पुष्करगूल या कुष्ठ का अपक्वमूल ही लिया जाता है। वस्तुतः कुष्ठ कड़वा ही होता है, किन्तु भाव प्रकाश के अनुसार खाने की औषधि में मीठा कुष्ठ का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि कड़वा कुष्ठ वातकारक होता है।

20. पाठा

सदैव हरी रहने वाली, जीवनदायनी, रोगों को दूर करने वाली यह औषधि मृत्यु से बचाने हेतु प्रयोग की जाती थी।[20] भव और शर्व को रोग निवारक एवं सुखमय दीर्घायु प्रदान करने वाला बताया है।[21]

21. वरण

यक्षमा रोग से पीड़ि व्यक्ति को वरण–नामक वृक्ष की मणि धारण कराके इस यक्ष्मा रोग को नष्ट किये जाने का वर्णन मिलता है। यक्ष्मा रोग को राजयक्ष्मा तथा क्षय नाम से भी जाना जाता है। इसका वर्तमान नाम TB (Tuberculosis) है।

22. चीपुद्र

यह औषधि कफ, क्षय, गले का रोग, फोडे–फुन्सी, श्वांस–खॉसी में खून आनपा आदि रोगों की निवारक औषधि बतायी गई है। इसके साथ हीयह त्वचा तथा मांस के विकारों को नष्ट करती है।[22]

23. जंगिड़ मणि

इस औषधि का वर्णन दीर्घायु प्राप्त करने के लिए तथा आरोग्य का प्रचुर आनन्द अनुभव करने के लिए यह जंगिड़ मणि धारण करने का वर्णन मिलता है। यह मणि रोगशामक तथा दुर्बलता नाशक होने के साथ–साथ सामर्थ्य बढाने वाली बतायी गयी है। यह मणि जमुहाई बढाने वाले, दुर्बलता पैदा करने वाले, देह को सुखाने वाले तथा अकारण आँखों में ऑसू आने वाले रोग से रक्षा करने वाली बतायी गई है। यह मणि सुखाने वाले रोग तथा समस्त रोग कीटाणुओं को दमन करती है। इसे बांधने केलिए सन से बने धागे का प्रयोग जंगिड मणि को बांधने के लिए किया जाताथा। यह विष्कन्द नामक रोग से भी रक्षा करती थी।[23]

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में आज भी इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग देखाजा सकता है। ज्वर में इसे पसीना लाने के लिए दिया जाता है, जबकि अन्य औषधि से थकावट होती है, किन्तु इससे नहीं होती है। इसके सेवन से पेशाब भी साफ आता है। अन्य ज्वरनाशक योगों में भी इसका प्रयोग होता हैजैसे कुमकुमादि चूर्ण में इसका प्रयोग है यह चूर्ण क्षय रोग व शिरो रोगनाशक बताया गया है। इसी प्रकार सारस्वत चूर्ण के योग में भी इसका प्रयोग है जोकि मस्तिष्क दौर्बल्य नाशक है। प्रसूति में होने वाले ज्वर नाशक सौभाग्यवटी के योग में भी इसका प्रयोग है। बाल ज्वर में प्रयुक्त होने वाले बाल लाक्षादि तैल के योग, मलेरिया के योग, प्रसूत ज्वर, के योग में तथा पुराने ज्वर में खाँसी सहित व रहित ज्वर के नाशन में कुष्ठ के प्रयोग का ही वर्णन मिलता है।[24]

24. वरणावती

इस औषधि में स्थित रस के सेवन से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। यह औषधि जमीन से खोदकर निकाली जाती थी, अर्थात पेड़ पर न लगकर यह औषधि जमीन में कन्द मूल की भांति पायी

जाती थी। खोदने के उपरान्त इसे शोधित करके प्रयोग में लाने से विष प्रभावित व्यक्ति बेहोश भी नहीं होता था। इसके सेवन से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता था।[25]

25. अपामार्ग

इस औषधि की सैकड़ों शाखाओं के कारण अन्य नाम विभिन्दती भी प्राप्त होता है अर्थात यह औषधि लता रूप में उगती है। यह औषध आनुवंशिक रोगों को भी समाप्त करने में सहायक है। इस औषधि का प्रयोग भूख–प्यास से मरने वाले, इन्द्रियों के दोष, तथा संतानहीनता आदि दोशों को भी दूर करने वाली बताई गई है। इसके अतिरिक्त इस औषध का प्रयोग समस्त रोगों को नष्ट करने के लिए विभिन्न औषधियों दोषों को दूर करने वाली सत्यजित क्रोध हरने वाली, शपथयावनी अभिचारों (तंत्र मंत्र द्वारा मारण) को सहन करने वाली सहमाना, विरेचक पुनः सरा, आदि के साथ भी प्रयोग का वर्णन मिलता है।[26]

26. अजश्रृंडी

यह औषध अथर्वाऋषि कश्यप ऋषि, कण्व तथा अगस्त्य आदिऋषियों के द्वारा रोगाणुओं को विनष्ट करने के लिए प्रयोग की गई थी। इस औषध द्वारा वायु तथा जल से फैलने वाले रोगाणुओं जनित बीमारी को नष्ट किया जाता था। अजश्रृंगी का अन्य नाम काकडासिंगी भी मिलता है। इस औषध की गंध से रोगाणु नष्ट हो जाये करते थे। रोगाणुनाशन के लिए इसके साथ साथ गुग्गुल, पीलु नलद अर्थात जटामांक्षी, गंघमांसी धावई अथवा प्रमोदिन आदि को प्रयोग किया जाता था।[27]

निष्कर्ष

अथर्ववेद ऐहिक सुख के साथ–साथ पारलौकिक सुख की भी व्यवस्था करता है। ऐहिक सुख का मूल साधन शरीर है, इसे स्वस्थ एवं सुखी बनाये रखने की व्यवस्था करना ही अथर्ववेद का प्रमुख विषय है। अतः इसके अन्तर्गत प्रचुर मात्रा मेंरोग निवारण सामग्री का पाया जाना स्वाभाविक है।

अर्थवेद में मानव शरीर की रक्षार्थ व स्वास्थ्यवर्द्धन हेतु अनेक औषधियों कावर्णन है। एक प्रकार से आयुर्वेदिक औशधियों का संगठित वर्णन सर्वप्रथम अर्थवेद मेंही प्राप्त होता है। इसमें आयुर्वेद शास्त्र के विकसित रूप के दर्शन प्राप्त होते है। इस काल में किसी भी रोगोपचार के लिए एक ही प्रकार की औषधि का प्रयोगकिया जाता था, अर्थात औषधियों के मिश्रण के स्थान पर एकल रोग में एकल औषधि का ही प्रयोग किये जाने का प्रमाण प्राप्त होता है। यह वर्तमान चिकित्साविधि के कार्य का भिन्न रूप है। अर्थवेद में अनेक औषधियों के नामों का वर्णन किया गया। यह वर्णन भी हमें ऋग्वेद की भांति स्तुति रूप में ही प्राप्त होता है।रोग के निवारणार्थ औषधियों से कामना की गई है, किन्तु अर्थवेद में वर्णित औषधियों के सेवनार्थ विधि काल एवं मात्रा के वर्णन का अभाव है। अर्थात अर्थवेद के आधार पर हम रोग से संबंधित औषधि का नाम ज्ञात कर सकते हैं न कि सम्बन्धित रोग की चिकित्सा विधि। अतः औषधि चिकित्सा के लिए अर्थवेद के साथ–साथ अन्य सहायक ग्रंथों का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है।

संदर्भ

1. सातवलेकर. श्रीपाद दामोदर ऋग्वेद भाश्य. स्वाध्याय मण्डलः पारडी, जिला बलसाड, गुजरात भाग 1.

2. शर्मा, श्री राम. यजुर्वेद. ब्रहमवर्चस्व शान्ति कुंज. हरिद्वार।
3. आचार्य, श्री राम शर्मा. (2002). अथर्ववेद संहिता. ब्रहमवर्चस्व शान्तिकुंजः हरिद्वार संस्करण – 5.
4. उपनिषद।
5. आयुर्वेद का वृहत इतिहास आचार्य अत्रिदेव विद्यालंकार।
6. शर्मा, (1981). आचार्य प्रियव्रत. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास. चौखम्भा ओरियन्टालियाः वाराणसी. द्वितीय संस्करण।
7. सिंह, प्रो० रामहर्श., प्रेमचन्द, दीपक यादव. (2017). आयुर्वेद का इतिहास. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनः वाराणसी।
8. विद्यालंकार, जयदेव. (1975). प्रणीत चरक संहिता. मोतीलाल बनारसी दासः नई दिल्ली नवम् संस्करण।
9. काशीनाथ, गोरखनाथ. (2019). चरक संहिता. चौखम्भा भारती एकेडमीः वाराणसी. द्वितीय संस्करण।
10. द्विवेदी, विश्वनाथ. (1975). धन्वंतरि संदिग्ध वनौषधि. मीरा प्रिंटिंग प्रेसः अलीगढ़।

Footnotes

1. अथर्ववेद काण्ड–1. सूक्त–23 मंत्र 1–4 पष्ठ **2.**
2. काण्ड 7. प 55–3 म–3.
3. काण्ड 6. सू 24 मं0–3.
4. काण्ड–3 सुक्ता–7– मं01. 5,6,7.
5. काण्ड–12 मं–1.
6. वही – मं–2.
7. वही – मं–3.
8. काण्ड 6. स० 70 म01–2.
9. काण्ड–1. सू० 28. नं० 14 पृष्ठ **16.**
10. काण्ड–6. सू० 109. म० 1.
11. काण्ड–1. सू० 24. मं० 1 दृ० 4. पृष्ठ **17.**
12. काण्ड–6 सू० 16. म० 1.2. पृष्ठ **160.**
13. का०–6 वर0 136, 137, 38, 39.
14. का०–2. सू० 25. म० 1–5. पृष्ठ **44.**
15. का० 2. सू० 31. मं० 1–5.
16. का0 2. सू० 7. म० 1. दृ० 4. पृष्ठ **10,30.**
17. का0 4. वसू० 4. मं० 1–8. पृष्ठ **94.**

18. का० 2. सू० 3. मं० 1–6.
19. का० 5. सू० 5. मं० 1–4. पृष्ठ **148.**
20. अ0का० 8. सू० 2. मं० 6.
21. अ0का० 8. सू० म० 7.
22. का० 6. भ० 127. में 1–3. पृष्ठ **25.**
23. काण्ड–2. सू० 4. मं० 1–6.
24. का० 5. सू० 4. मं 10. पृष्ठ **143,144.**
25. का० 4. सू० 7. मं 1–7. पृष्ठ **97.**
26. का० 4. सू० 17,18,19. पृष्ठ **113.**
27. मं० 2. नू० 37. का० 4. पृष्ठ **133.**